वेदों में प्रकृति चित्रण व पर्यावरण चेतना

डॉ ममता तंवर

प्रस्तावना :

वेदो अखिलो धर्ममूलम्

वेद ही शास्त्रों, उपनिषदों, दर्शन आदि धर्मग्रन्थों के मूल आधार हैं। वेद भारतीय संस्कृति के मूल स्त्रोत हैं जिनमें न केवल धर्म दर्शन वरन् मानव के इहलोक व परलोक में कल्याण हेतु उपयोगी सिद्धान्तों को संकलित किया गया है। प्रकृति व प्राकृतिक घटनाओं का चित्रण भी कई मंत्रो में किया गया है।

मानव जीवन प्रकृति से अभिन्न रूप से जुड़ा है। हमारा कल्याण प्रकृति पर निर्भर है अतः यह परम आवश्यक है कि प्रकृति की विभिन्न शक्तियाँ हमारे अनुकूल बनी रहें। यह भावना कई वैदिक मंत्रों में दिखाई देती है, जहाँ इन विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों, जिन्हें देवताओं के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, की स्तुती की गई है। उनकी प्राणीमात्र के प्रति अनुकूलता की प्रार्थना की गई है।

आर्य अपने आस–पास के वातावरण व पर्यावरणीय अवयवों से बहुत गहराई से जुड़े थे। यही कारण है कि वेदों में प्रकृति का वर्णन बड़े ही सहज व सुन्दर रूप में किया गया है। विभिन्न मंत्रों में वृक्षों, वनों, दूर्वा, औषधियों आदि के महत्व, पर्वतों की स्थिरता, नदियों की गति, चन्द्रमा की शीतलता, वायु के प्रवाह, आकाश व पृथ्वी की विशालता, सांयकालीन ताम्रवर्ण सूर्य व प्रातः कालीन अरूणिम सूर्य, मेघों के गर्जन, वृष्टि आदि का वर्णन है। वे प्रकृति में अपने आराध्य देव को देखते है। वह नदी की रेत व नदी के प्रवाह में है, नदी की तलहटी में कंकड़ आदि में है, कौड़ी–सीप में है, उर्वर भू–भाग व ऊसर भूखण्ड पर भी वहीं है, हिम शिखरों पर व पर्वतीय गुफाओं में है, सूखे काष्ठ में व हरे पर्ण में है, पुष्पों में है, तृण में भी वही विराजित है।

इन्हीं प्राकृतिक तत्वों में से एक जल जीवन का आधार है। इस तथ्य से परिचित आर्य पेय–जल, झरने के जल, प्रवाहित जल, कुए के व वर्षा के जल, समुद्र के जल व वायु में स्थित जल के प्रति आहुतियाँ अर्पित करते हैं,[1] ताकि उसकी उपलब्धि व शुद्धता सदैव बनी रहे।

जल को सम्पूर्ण विश्व को तृप्त करने वाला[2] व सुख का मूल स्त्रोत[3] कहा गया है।

'यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिवः मातरः'।।[4]

जलदेव अपने अति सुखदायी पोषकरस का हमें सेवन करने दें। जिस प्रकार माताएँ अपने दुग्ध से बच्चों को पोषित करती हैं, उसी प्रकार आप हमें भी पोषित करें।

जल में अमृत समान गुण हैं, जल में औषधीय गुण भी हैं। ऐसे जल की प्रशंसा से देव उत्साह प्राप्त करें।

'अप्स्व1न्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये। देवा भवत वाजिनः।।[5]

यजुर्वेद के एकादश अध्याय में भी जल के महत्व पर प्रकाश डाला गया है –

'तस्माऽअरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः।।'[6]

अर्थात हे जलसमूह ! आप सम्पूर्ण जगत को तृप्त करते हैं, आप हमारी उत्पत्ति के निमित्ति भूत हैं, आपका यह कल्याणकारी रस हमें प्राप्त हो। अपने जन उपयोगी गुणों से आप हमें अभिपूरित करें।

जल मनुष्यों व अन्य प्राणियों के जीवन के लिए परम आवश्यक है। अतः जल से प्रार्थना की गई है कि वह मनुष्यों, उनकी सन्तानों, सेवकों व पालतू पशुओं को तृप्त करें। जल के अभाव में कभी किसी को कष्ट न हो।[7]

सूर्य की किरणों द्वारा जल के वाष्पीकरण की प्रकिया से आर्य परिचित थे।[8] जल के वाष्पीकरण, फिर वर्षा के रूप में पुनः उसकी वृष्टि का वर्णन किया गया है। यह वर्षा का जल पृथ्वी पर वनस्पति व औषधियों की उत्पत्ति करता है व कृषि के लिए महत्वपूर्ण है।[9]

वर्षा से नदियाँ प्रवाहित होती हैं जो माताओं व बहिनों के समान उपकार करने वाली कही गई हैं।[10] पर्वत से नीचे बहती हुई जलधाराओं से राजा के अभिषेक के जल की तुलना की गई है। नदियाँ मरूद्गणों की सहायता से तीव्र गति से प्रवाहित होती हैं और असीम भूक्षेत्र को ढक लेती हैं।[11] ये नदियाँ स्वाभाविक रूप से समुद्र की ओर प्रवाहित होती हैं।[12] आनन्द प्राप्ति के लिए तैयार किया गया सोमरस पात्र में उसी प्रकार स्थिर होता है जिस प्रकार सभी नदियाँ अपने आश्रय–समुद्र के पास पहुँचकर स्थिर होती हैं।[13]

ऋग्वेद में सिन्धु नदी और उसकी सहायक नदियों का भी वर्णन किया गया है। कहा गया है कि जिस प्रकार माताएँ अपने शिशुओं के पास और दुधारू गाय बछड़े के पास जाती हैं, उसी प्रकार अन्य नदियाँ ध्वनि करती हुई सिन्धु नदी की ओर बहती हैं।[14] सिन्धु नदी में तुष्टामा, सुसर्त्तु, रसा, श्वेत्या, कुभु, गोमती, कुभा व मेहत्नु आदि नदियाँ सम्मिलित होती है।[15] सिन्धु नदी प्रचण्ड लहरों के साथ तेज ध्वनि उत्पन्न करती हुई बहती है।[16] यह कामना की गई है कि सिन्धु नदी हमें अन्नादि प्रदान करे, कृषि उत्पादन में वृद्धि करे।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल में गंगा, यमुना, सरस्वती, शतुद्री (सतलज), पुरूष्णी (रावी), असिक्नी (चिनाव), वितस्ता (झेलम), सुषोमा (सोहान), आर्जीकीया (व्यास) आदि नदियों का भी उल्लेख है।[17]

एक ओर जहाँ वेदों में वर्षा, जल व नदियों का वर्णन है, वहीं दूसरी ओर अनावृष्टि की समस्या का भी उल्लेख है।

'न ये दिवः पृथित्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्य भूवन।
युजं वज्रं वृषभश्चक इन्द्रो निर्ज्यौतिषा तमसो गा अदुक्षत्।।'

अर्थात मेघ रूपी वृत्र द्वारा जल को रोक लिया गया जिसके परिणामस्वरूप जल की पृथ्वी पर वर्षा नहीं हो सकी। जल के अभाव में धरती पर वनस्पति नहीं उग सके, तब इन्द्र ने अपने प्रकाशवान वज्र से अन्धकार रूपी मेघ को भेदकर गाय के समान जल का दोहन किया।[18] रम्भाती हुई गायों के समान जल प्रवाह तीव्र वेग से समुद्र की ओर चला गया।[19]

एक अन्य स्थान पर मित्रावरूण से प्रार्थना की गई है कि वे स्त्रोतों और आहुतियों से प्रसन्न होकर दिव्य वृष्टि करें और यज्ञकर्त्ता को अकाल व उससे उत्पन्न दुख–दारिद्रय से मुक्ति दिलाये।[20]

जल के ही समान वायु भी जीव जगत के प्राणों का आधार है। वायु का महत्व प्रकट करते हुए कई मंत्रों की रचना की गई। यह प्रार्थना की गई है कि इस पृथ्वी पर कल्याणकारी वायु बहती रहे।[21] यज्ञ करने वालों के लिए वायु और नदियाँ मधुर प्रवाह उत्पन्न करें।

'मधु वाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः।'[22]

वायु मनुष्यों के लिए व्याधियों का निवारण करने वाली औषधियों को लेकर आये। अहितकर या दूषित पदार्थों को बहाकर दूर ले

जाए। वायु को कल्याणकारी देवदूत बनकर संचार करने वाला कहा गया है।[23] वायु वनस्पतियों की उत्पत्ति व विकास के लिए आवश्यक हैं अतः वायु से यह भी प्रार्थना की गई है कि वह औषधियों को श्रेष्ठ फलों से युक्त करे।[24]

परन्तु वही प्राणदायक वायु यदि अत्यधिक वेग से बहने लगे तो हानि भी उत्पन्न हो सकती है। एक मंत्र तीव्र वेग से प्रवाहित वायु का उल्लेख करता है जो विविध प्रकार की ध्वनि उत्पन्न करती हुई वृक्ष–वनस्थति आदि को क्षति पहुँचाती हुई बहती है। सब ओर धूल के कण बिखेरती है।[25]

वायु द्वारा अग्नि को वनों की ओर अभिमुख करके वृक्ष वनस्पतियों के नाश का भी वर्णन किया गया है।[26] अतः स्वाभाविक है कि आर्य यह कामना करते हैं कि वायु हमारे लिए सदैव अनुकूल व हितकारी बनी रहे। सर्वत्र गमन करने वाली वायु प्राणरूपी जीवन तत्व हमारे कल्याण के लिए पहुंचाए–

'यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः। ततो न देहि जीवसे।।'[27]

सूर्य का प्राकृतिक शक्तियों में एक विशिष्ट स्थान है। जैसा कि यजुर्वेद में कहा गया है–

'अग्निर्मूर्धा दिवः ककुरपतिः पृथित्याऽअयम्। अपारेतासि जिन्वति।'

अर्थात–यह अग्निदेव सूर्य के रूप में द्युलोक में विद्यमान रहकर पृथ्वी का पालन करते है, जीवन का संचार करते हैं तथा जल में जीवनी शक्ति उत्पन्न करते है।[28]

अन्यत्र सूर्य के महत्व को दर्शाते हुए कहा गया है–

'विश्वारूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे।
वि नाकमख्यत्सविता वेरण्योनु प्रयाणमुषसो वि राजति।।'[29]

अर्थात वरणीय, त्रिकालदर्शी सविता देवता उषा काल के पश्चात प्रकाश बिखेरते हैं जिसके परिणामस्वरूप सभी पदार्थ अपने स्वस्थ स्वरूपों को धारण करते हैं। वे मनुष्यों व अन्य सभी प्राणियों को कल्याणकारी मार्ग में प्रवृत्त करते हैं।

हरे रंग की वनस्पतियों और इन पर आश्रित सभी जीवों का पोषण ज्योतिर्मान सूर्यदेव द्वारा किया जाता है जो पूर्व दिशा से अपनी किरणों को प्रकट करते हैं। सूर्यदेव जितेन्द्रीय, विद्वान व पोषणकर्त्ता हैं, जो सतत् गमनशील है तथा सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करते है।[30]सूर्य को अपने प्रकाश से सभी दिशाओं को प्रकाशित करने वाला तथा दिन व रात्रि का निर्माण करने वाला बताया गया है।[31]सूर्य की किरणें जीव जगत को प्रकाशित करती हैं। सूर्य के उदित होते ही तारे व नक्षत्र छिप जाते हैं, इनकी तुलना चोरो से की गई है जो दिन होते ही छिप जाते है।[32]

सूर्य सभी दिशाओं में संचार करता है, सभी प्राणियों व पृथ्वी का संरक्षण करने वाला कहा गया है इसीलिए सूर्य के लिए यज्ञ किए जाते थे और आहुतियाँ दी जाती थी।

'अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि। तस्य व्रतान्युश्मसि।।'

ऋत्विज हमारी रक्षा के लिए सविता देव की स्तुति करें। उनके निमित्त सोमयागादि कर्म सम्पन्न करे। सविता देव जलों को

सुखाकर उन्हें सहस्त्र गुना कर बरसाते हैं।[33] सूर्य समस्त प्राणियों के आश्रयभूत हैं, विभिन्न धनों को प्रदान करने वाले हैं तथा मानवमात्र के प्रकाशक हैं। सूर्य को पृथ्वी पर अग्नि के रूप में विद्यमान माना गया है।

'भूर्भुवः स्वद्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा।

तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेग्निमन्नादमन्ना द्यायादधे।।'[34]

अग्निदेव पृथ्वी लोक में अग्नि के रूप में, अन्तरिक्ष में विद्युत रूप में और द्युलोक में सूर्य के रूप में विद्यमान है। अग्नि भूमि में ज्वालामुखी के रूप में और पत्थरों में चिनगारी के रूप में विद्यमान है।[35] अग्नि का आर्यों के दैनिक जीवन में विशेष महत्व था। आर्य अग्नि की देवता के रूप में स्तुति करते हैं, उनके प्रति आहुतियां अर्पित करते हैं। परन्तु यह भी तथ्य है कि मानव जीवन के लिए उपयोगी अग्नि यदि विकराल रूप से धारण कर ले तो जन धन की भारी हानि हो सकती है। इसीलिए आर्य कामना करते हैं कि अग्नि उनके प्रति कल्याणकारी हो। अग्नि द्वारा तृण व वनस्पतियों का दहन कर दिया जाता है तथा उपजाउ भूमि ऊसर हो जाती है। अतः प्रार्थना की गई है कि अग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओं के कोप का भाजन हम न बनें।[36]

हम सभी प्राणी पृथ्वी से आश्रय पाते हैं और हमारा जीवन पृथ्वी के विभिन्न संसाधनों पर निर्भर है।

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

अर्थात पृथ्वी मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ। यह पृथ्वी और विभिन्न प्रकार के जीव–जन्तुओं का सम्बंध अभिव्यक्त करता है। अथर्ववेद के द्वादश काण्ड में भूमि सूक्त या पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी को सभी प्राणियों की माता कहा गया है। प्रार्थना की गई है कि भूतकालीन, वर्तमान व भविष्य में होने वाले सभी जीवों का पालन करने वाली पृथ्वी माता सभी को विस्तृत स्थान प्रदान करें।[37] यह भूमि विभिन्न प्राणियों, वृक्षों, वनस्पतियों आदि का पालन पोषण करती है[38] तथा विभिन्न खनिजों आदि सम्पदाओं की खान है।

'विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।'

भूमि विश्व का भरण–पोषण करने वाली, धनों की खान, सब की प्रतिष्ठा, स्वर्ण युक्त तथा जगत को बसाने वाली है।[39] यह भूमि हमें सभी प्रकार के भोजन– अन्न, जल, दूध, घी आदि प्रदान करती है।[40] पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले तथा उस पर विचरण करने वाले सभी प्राणियों, द्विपादों तथा चतुष्पादों का वहीं पोषण करती है।[41]

'यस्या वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।

पृथ्वीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि।।'[42]

अर्थात जिस भूमि में वृक्ष वनस्पति और लता आदि सदा स्थिर रहते है, जो वृक्ष–लतादि औषधिरूप में सबकी सेवा करती है, ऐसी वनस्पति धारिणी, धर्मधारिणी और सर्वपालनकर्त्री धरती की हम स्तुति करते हैं। यह भी प्रार्थना की गई है कि पृथ्वी के हिमाच्छादित पर्वत तथा वन हमें सुख प्रदान करें। विभिन्न रंगो वाली इस पृथ्वी पर हम अनाहत होकर प्रतिष्ठित रहे।[43] जिस मातृभूमि पर जल के विभिन्न स्त्रोत हैं जैसे सागर, महासागर, नदी, झीले तालाब आदि, जहां सभी प्रकार के अन्न, फल आदि अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न हाते हैं, जिसके सभी प्राणी सुखी है, इस प्रकार की हमारी पृथ्वी हमें श्रेष्ठ योग्य पदार्थ और ऐश्वर्य प्रदान करने वाली हो–

'यस्यां समुद्रउत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।

यस्यामिदं जिन्वाति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु।।'[44]

आर्य सभी प्राकृतिक शक्तियों के महत्व को स्वीकार करते हैं तथा अपना जीवन प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाकर व्यतीत करना चाहते हैं ताकि प्रकृति सदैव सभी प्राणियों के प्रति अनुकूल बनी रहे। जैसा कि ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में कहा गया है–

'स्योना पृथिवी भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथः।'[45]

हे देवी पृथ्वी, आप सुख प्रदान करने वाली, बाधाओं का हरण करने वाली और उत्तम वास देने वाली हैं। आप हमें विपुल सुख प्रदान करें।

अन्यत्र प्रार्थना है कि पिता की तरह पोषण करने वाला द्युलोक हमारे लिए मधुर हो। माता के समान रक्षा करने वाली पृथ्वी की रज भी मधु के समान आनन्द दायक हो। रात्रि व उषा हमारे लिए माधुर्य युक्त हों।[46]

आर्य द्यावा–पृथिवी रूपी माता पिता की विशेषताओं से परिचित थे। द्युलोक एवं पृथ्वी स्थावर व जंगम् दोनों का संरक्षण करते हैं।[47] अतः आर्य आकाश व पृथ्वी की सुस्थिरता व संरक्षण की कामना करते हुए उनकी स्तुति करते हैं–

'भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्त पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते।

नित्यं न सूनुं पित्रोरूपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात्।।'[48]

स्वयं पद विहीन व अचल होने के बावजूद द्यूलोक व पृथ्वी असंख्य पदयुक्त प्राणियों को धारण करते हैं। जैसे माता पिता अपने पुत्र की सहायता करते हैं, उसी प्रकार द्युलोक व पृथ्वी हम सभी प्राणियों को संकटों से बचाए। जंगली पशुओं, सिंह, बाघ, भेडियों, भालुओं आदि को हमसे दूर रखकर पृथ्वी हमें अभय बनाए।[49]

सांप, बिच्छु आदि दंश से पीड़ित करने वाले प्राणी, छिपकर रहने वाले कृमि आदि, वर्षा ऋतु में विचरण करने वाले, रेंगने वाले, विषैले प्राणी हमारा स्पर्श न करें।[50] सभी वनस्पतियां भी हमारे लिए आरोग्य प्रदायक हों।

आर्य मात्र अपने व अन्य मनुष्यों के लिए ही प्रार्थना नहीं करते, वरन् सम्पूर्ण प्राणी जगत के लिए शुभ की कामना करते हैं। अथर्ववेद के एकादश काण्ड में सभी द्विपाद व चतुष्पाद जीवों के सुख की प्रार्थना की गई है। पशुपति देव को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि जंगली पशु, मृग, हंस, गरूड व अन्य वनचर पक्षी उन्हीं के हैं। यजुर्वेद (16/17–19) में रूद्र देवता को वृक्षों के समान हितकारी बताया गया है। वह पशुओं, सभी जीवों व वनों का पालक है। वृक्षों और औषधियों का पोषक है। वह नदी व द्वीप में, पशु आदि रूप में, वृक्षों के मूल में, घास आदि औषधियों में स्थित है। अतः यह माना जा सकता है कि ये सभी आर्यो के लिए पवित्र व महत्वपूर्ण रहे होंगें तथा इन्हें हानि पहुंचाना पाप तुल्य रहा होगा। परन्तु दैनिक जीवन में मनुष्य के कई किया–कलाप प्रकृति पर अपना प्रभाव डालते ही हैं। आर्य इस बारे में सचेत थे कि उनके द्वारा प्रकृति को हानि न पहुंचे। औषधियों को खोदते समय वे प्रार्थना करते है कि रोगोपचार हेतु औषधियों के मूल भाग को लेने की आवश्यकता है, अतः खुदाई करने वाले व्यक्ति पर खनन दोष न लगे तथा जिस रोगी के लिए यह खनन किया गया उस पर भी दोष न हो। औषधियां सभी को आरोग्य प्रदान करें। साथ ही यह भी कामना है कि औषधियां भी दीर्घायु को प्राप्त करें और पुनः असंख्य अंकुरों के रूप में प्रस्फुटित हों। वनस्पतियों की वृद्धि हेतु पृथ्वी का अभिषेक किया जाता है।

अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त (12/1/35) में भी ऐसी ही प्रार्थना है कि जब मनुष्य औषधियां, कन्द आदि निकालने के लिए या बीज बोने के लिए पृथ्वी को खोदें तो वे वस्तुएं पुनः शीघ्रता से उगे व बढे। इस क्रम में हमारे द्वारा पृथ्वी के मर्म स्थलों को हानि न पहुंचे। एक स्थान पर यह भी कहा गया है कि शरीर द्वारा विसर्जित पदार्थ भी किसी प्रकार से पर्यावरण को दूषित न करें। यज्ञ स्थल के पास विकारग्रस्त जल (मूत्रादि) के विसर्जन हेतु गड्डे खोदे जाते थे तथा यह प्रार्थना की जाती थी कि यह प्रकिया पाप से मुक्ति दिलाने वाली हो तथा यह विकार युक्त जल पृथ्वी में प्रवेश कर मिट्टी के साथ एकाकार हो जाए।

वेदों का स्पष्ट संदेश है कि प्रकृति का आदर किया जाए। पृथ्वी को मनुष्य दृढ करें, उसकी हिंसा न करे (यजुर्वेद 13/18) औषधियों व जल को यथास्थान सुरक्षित रखा जाए व उन्हें नष्ट न होने दिया जाए। वनस्पतियां अपने स्थान पर स्थिर हो। हम सदैव पाप रहित व सम्पूर्ण प्राणियों के लिए कल्याणकारी मार्ग का अनुसरण करें। और द्युलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, समुद्र, औषधियाँ आदि– अनिष्टों का निवारण करके हमें सुख–शान्ति प्रदान करें–

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्व1न्तरिक्षम्।

शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः।।

व्याख्याता

श्री भवानी निकेतन महिला महाविद्यालय जयपुर

संदर्भ सूची

1. यजुर्वेद – 22/25
2. ऋग्वेद – 10/9/3
3. यजु. – 11/41
4. ऋग्वेद – 10/9/2
5. ऋग्वेद – 1/22/19
6. यजु. – 11/52
7. यजु. – 6/31
8. यजु. – 6/25
9. यजु. – 6/28
10. ऋग्वेद – 9/86/36
11. ऋग्वेद – 10/92/5
12. ऋग्वेद – 9/88/6
13. ऋग्वेद – 9/107/9
14. ऋग्वेद – 10/75/4
15. ऋग्वेद – 10/72/6
16. ऋग्वेद – 10/75/3
17. ऋग्वेद – 10/72/6
18. ऋग्वेद – 1/33/10
19. ऋग्वेद – 1/32/2
20. ऋग्वेद – 1/252/7
21. अथर्ववेद – 12/3/12
22. ऋग्वेद – 1/10/6
23. ऋग्वेद – 10/137/3
24. यजु. – 12/69
25. ऋग्वेद – 10/168/1
26. ऋग्वेद – 1/65/7–8
27. ऋग्वेद – 10/186/3
28. यजु. – 3/12
29. यजु. – 12/3
30. यजु. – 17/58
31. अथर्ववेद – 13/2/2–3
32. अथर्व – 13/2–17
33. ऋग्वेद – 1/22/6
34. यजु. – 3/5
35. यजु. – 12/14
36. ऋग्वेद – 10/142/3

37–41 अथर्व – 12/1/1–15

42. अथर्व – 12/1/27
43. अथर्व – 12/1/11
44. अथर्व – 12/1/13
45. ऋग्वेद – 1/22/15
46. ऋग्वेद – 1/90/7
47. ऋग्वेद – 1/159/3